जिसने बदली दिशा जगत् की,
धरती और आकाश की ।
जय बोलो ऋषि दयानन्द की,
जय सत्यार्थ प्रकाश की ।।

।। ओ३म् ।।

वर्ष -५९ अंक - ६
मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक :१००) रु०
आजीवन -१०००) रु०
प्रतिमास ता० १३ को प्रकाशित

आर्य-संसार

ज्येष्ठ-आषाढ़ : सम्वत् २०७३ वि० जून - २०१६

महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ

आर्य समाज कलकत्ता द्वारा संस्थापित एवं संचालित **आर्य कन्या महाविद्यालय एवं रघुमल आर्य विद्यालय** का माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक परीक्षा २०१६, परीक्षा फल का विवरण निम्न है :—

१. आर्य कन्या महाविद्यालय :-

माध्यमिक परीक्षा – २०१६

कुल परीक्षार्थियों की संख्या - १७१
उत्तीर्ण परीक्षार्थियों की संख्या - १३९
परीक्षाफल - ८२% प्रतिशत
'ए' ग्रेड अर्थात् प्रथम श्रेणी में
उत्तीर्ण छात्राओं की संख्या - १४
विद्यालय में सर्वोच्च अंक पाने वाली छात्रा
प्रीति गुप्ता - ५५२/७००

उच्च माध्यमिक परीक्षा – २०१६

कुल परीक्षार्थियों की संख्या - २९४
उत्तीर्ण परीक्षार्थियों की संख्या - २६९
परीक्षाफल - ९२% प्रतिशत
विद्यालय की सर्वोच्च अंक पाने वाली छात्रा
रूकइया खातून (मानविकी) - ४०९/५००

२. रघुमल आर्य विद्यालय :-

माध्यमिक परीक्षा - २०१६

कुल परीक्षार्थियों की संख्या - ८८
उत्तीर्ण परीक्षार्थियों की संख्या - ७२
परीक्षाफल - ८२% प्रतिशत
विद्यालय में सर्वोच्च अंक पाने वाला छात्र
रोहण गुप्ता - ४९९/७००

उच्च माध्यमिक परीक्षा - २०१६

कुल परीक्षार्थियों की संख्या - २४७
कुल उत्तीर्ण छात्रों की संख्या - २०४
परीक्षाफल - ८३% प्रतिशत
'ए' ग्रेड (प्रथम श्रेणी) ३२ रेगुलर एवं ०८ सी.सी.
विद्यालय में सर्वोच्च अंक पाने वाला छात्र
राजा टाँटी - ३८७/५०० (कामर्स)

आर्य समाज कलकत्ता की ओर से सभी सफल छात्र-छात्राओं, विद्यालय के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं, सहकर्मी वृन्द तथा प्रबन्धकारिणी समिति को शुभकामनाएँ ।

—०—

ओ३म्

आर्य-संसार

वर्ष ५९ अंक — ६
ज्येष्ठ-आषाढ़ २०७३ वि०
दयानन्दाब्द १९२
सृष्टि सं० १,९६,०८,५३,११७
जून — २०१६

आद्य सम्पादक
प्रो० उमाकान्त उपाध्याय
(स्मृति शेष)

•

सम्पादक :
श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल

सहयोगी संपादक :
श्रीमती सरोजिनी शुक्ला
श्री सत्यप्रकाश जायसवाल
पं० योगेशराज उपाध्याय

•

शुल्क : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १०० रुपये
आजीवन : १००० रुपये

इस अंक की प्रस्तुति

१.	आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ		२
२.	दिव्य जन हमारा कल्याण करें (४१)	वेद-वीथिका से	४
३.	आस्था का महाकुम्भ : कितना सार्थक, कितना उपयोगी	पं० योगेशराज उपाध्याय	७
४.	आचार्य पंडित ऋषिराम जी	(आर्य समाज कलकत्ता के शतवर्षीय इतिहास से)	१०
५.	स्वामी जी का स्वकथित जीवन-चरित्र जीवन चरित्र	पं० लेखराम द्वारा संकलित एवं कविराज रघुनंदन सिंह निर्मल द्वारा अनुवादित	११
६.	श्रीराम का शील, शक्ति और सौन्दर्य	परीक्षित मंडल 'प्रेमी'	१६
७.	श्री सुखदेव जी शर्मा		१९
८.	भगवान और ईश्वर शब्द की परिभाषा	पं० उम्मेदसिंह 'विशारद'	२०
९.	बालक की शक्तियों का क्रमिक विकास		२२
१०.	''अभयदान''	देवनारायण भारद्वाज	२४
११.	''योगः कर्ममु कौशलम्। समत्वं योग उच्यते।।''	खुशहाल चन्द्र आर्य	२५
१२.	सूचना		२७
१३.	आर्य स्त्री समाज कलकत्ता		२८

आर्य समाज कलकत्ता

१९, विधान सरणी, कोलकाता-७०० ००६

दूरभाष : २२४१-३४३९ ***email : aryasamajkolkata@gmail.com***

'आर्य संसार' में प्रकाशित लेखों का उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों पर है ।
किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र कोलकाता ही होगा ।

दिव्य जन हमारा कल्याण करें

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ।।

अथर्व० १०-६३-९

शब्दार्थ :-

भरेषु	=	जीवन-यज्ञ में, संघर्षों में	इन्द्रम्	=	ऐश्वर्यशाली प्रभु को
सुहवम्	=	पुकार सुननेवाले को	हवामहे	=	हम पुकारते हैं
अहोमुचम्	=	पापनाशक	सुकृतम्	=	उत्तम कर्म वाले
दैव्यम् जनम्	=	दिव्य पुरुष को	अग्निम्	=	अग्नि को
मित्रम्	=	मित्र को	वरुणम्	=	वरणीय को
सातये	=	उत्तम गुणों के लिए	भगम्	=	ऐश्वर्य
द्यावापृथिवी	=	द्यौ लोक, पृथ्वी लोक	मरुतः	=	आकाश की शक्तियां
स्वस्तये	=	कल्याण के लिए			

भावार्थ :-हम जीवन के यज्ञों में, संघर्षों में प्रभु को पुकारते हैं । प्रभु शीघ्र ही पुकार सुनने वाले और पापों से बचाने वाले हैं । सुकृत, दिव्यजन, अग्नि, द्यौ लोक, पृथ्वी, आकाशस्थ शक्तियां आदि हमारे उत्तम गुण कल्याण और ऐश्वर्य के लिए हों ।

विचार विन्दु :

१. **जीवन-यज्ञ, जीवन संघर्ष का स्वरूप ।**
२. **प्रभु को पुकारने की महिमा ।**
३. **दिव्यजनों द्वारा कल्याण ।**
४. **अग्नि आदि और पृथ्वी आदि द्वारा कल्याण ।**

व्याख्या

प्रस्तुत मंत्र में हम प्रभु को सहायता के लिए पुकारते हैं । वस्तुतः हमारा जीवन संघर्ष का जीवन है । यह संघर्ष सदा तलवार, तोप, बन्दूक, गोलों से ही नहीं लड़ा जाता । जीवन में हमारे सबसे बड़े शत्रु तो पाप पैदा करने वाले काम, क्रोध, लोभ आदि हैं । हम देखते हैं कि हमारे दो तरह के शत्रु हैं। सेनाओं से लड़ने वाले शत्रु तो हैं ही, चोर, दुष्ट, लुटेरे भी शत्रु ही हैं । यह शत्रु हमसे बाहर हैं, यह बाह्य शत्रु हैं । हमारे कुछ आन्तरिक शत्रु भी हैं — काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, मद, मत्सर

इत्यादि सब हमारे आन्तरिक शत्रु हैं । और यह आन्तरिक शत्रु बाह्य शत्रुओं से अधिक भयानक और बलवान हैं । इन शत्रुओं से बचने के लिए हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं--कि प्रभो ! हमें इन पापों से बचाने वाले सुकृत दिव्य-जन प्राप्त हों । हमारा जीवन ऐसा हो कि हम उत्तम कर्म करने वाले सुकृति करने वाले पथ प्रदर्शक दिव्य-जनों को प्राप्त करें । अन्ततः यह जीवन निर्माण का, पाप से बचकर रहने का संघर्ष ही है और इस संघर्ष में विजयी होना कल्याण का पथ है । इस कल्याण की साधना को हम तीन चरणों में बांट कर देखते हैं :-

(१) ब्रह्मचर्याश्रम् - प्रथम चरण हमारे जीवन निर्माण का है। जीवन निर्माण में विद्या - बुद्धि और शरीर का निर्माण है । शरीर और विद्या-बुद्धि के साथ विद्या और आचरण का समन्वय आवश्यक हैं। यह सुकृती दिव्यजनों की संगति से ही सम्भव है। शरीर का स्वास्थ्य, विद्या की उपलब्धि अच्छे सुसंस्कारी, सदाचारी, सद्विचारी लोगों की संगति से सुलभ है । साथी अच्छे मिलें और गुरु-अध्यापक अच्छे मिलें तो प्रथम चरण का यज्ञ पूरा होता है ।

(२) गृहस्थाश्रम् - निर्माण का दूसरा चरण संसार के अभावों से संघर्ष करना है । प्रथम चरण में अविद्या से संघर्ष किया और द्वितीय चरण में सांसारिक अभावों से संघर्ष करना है । इसमें परिश्रमपूर्वक अग्नि, मित्र, वरुण आदि दिव्य-शक्तियों से सहायता लें । अग्नि ऊर्जा देगी, वरुण अच्छे कर्मे का वरण करायेंगे और मित्र पाप-कर्मों से अलग रखेंगे । गृहस्थी का मूल है, सांसारिक अभावों को दूर करना । इन अभावों से लड़ने का मूल-मंत्र है - परिश्रमपूर्वक जीवन की सामग्री को प्राप्त करना । आजीविका के सभी क्षेत्र यहां हैं । कृषि, उद्योग, व्यवसाय सेवाएं सब यहीं हैं । द्यौलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, जलवायु, सब का सहयोग आवश्यक है । गृहस्थाश्रम विलास का परमिट नहीं है, यह मोक्ष तक की साधना का आश्रम है ।

(३) वानप्रस्थाश्रम - जीवन निर्माण का तृतीय चरण है - साधना, आत्मा की उन्नति । मनुष्य बुद्धिमान प्राणी हैं । इसकी बुद्धि पाप-कर्मों में भी रह सकती है और पुण्य-कर्मों में भी रह सकती है । ध्यान देने की बात है कि हमारी चेतना, हमारा चिन्तन यदि हमारी निकृष्ट, स्वार्थी, विलासी कामनाओं में रहेगा तो हमारी चेतना का अधोगमन होगा । हमारी कामनाओं के केन्द्र, काम-केन्द्र, शरीर में सबसे नीचे हैं । यह नाभि से नीचे का अंग है । जैसे-जैसे हम अपनी चेतना का उत्थान करने लगते हैं, हमें अपनी कामनाओं, अपनी इच्छाओं को उच्च से उच्चतर बनाना आवश्यक हो जाता हैं । जैसे-जैसे हमारी चेतना ऊपर उठती है वैसे - वैसे हमारी निम्न कामनायें उच्च बनकर ऊपर उठने लगती हैं । गृहस्थी के दायित्वों को पूर्ण करके आध्यात्मिक साधन इस तृतीय आश्रम में करना चाहिए ।

हममें पशु-प्रवृत्ति और देव-प्रवृत्ति दोनों हैं । पशु-प्रवृत्ति में आहार, निद्रा, भय, काम-क्रीड़ा इन चार को गिनते हैं । कहने को तो मनुष्य की ये प्रवृतियां पशु प्रवृत्ति (Animal Passion) हैं । किन्तु, वस्तुतः यदि देखें तो इन प्रवृत्तियों में भी पशु मनुष्य से अधिक संयमी जीवन बिताते हैं । जब पशुओं का पेट भर जाता है तो वे अचार, चटनी चाट कर अधिक खाने की चेष्टा नहीं करते । पशु अपनी नींद से अधिक

सोते भी नहीं, न बिना कारण भयभीत होते हैं और न ही प्रकृति का उल्लंघन करके सन्तान पैदा करते हैं । यह मनुष्य ही है जो पशुओं से भी अधिक पतित असंयमी है । अतः भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हे देव ! आप तो पापों से बचाने वाले हैं । संसार की सारी दिव्य-शक्तियां हमें इन पापों से अलग करें ।

वस्तुतः प्रार्थना करने से सहायता मिलती भी है । एक तो छलिया-प्रार्थना है, मन में पाप की भावना है और ऊपर से भगवान से प्रार्थना करते हैं, ऐसी प्रार्थना भगवान् नहीं सुनते । मनुष्य जब सच्चे हृदय से प्रार्थना करता हैं तो भगवान उसकी बुद्धि को स्वस्ति के मार्ग पर प्रेरित करते हैं । प्रसिद्ध मंत्र, गुरु मंत्र गायत्री में हम भगवान् से प्रार्थना करते है -

'धियो यो नः प्रचोऽदयात्' ।

हे भगवान् ! हमारी बुद्धियों को सुमार्ग पर चलने की सदा प्रेरणा किया करें और संसार की जितनी दिव्य शक्तियां हैं वे हमको स्वस्ति के, कल्याण के मार्ग पर चलने में,हमारे शरीर, आत्मा और समाज के उत्थान में सदा सहयोग किया करें । इन्द्र, वरुण, मित्र और मरुत, ये सभी प्रभु की दिव्य शक्तियां हैं । ये हमारे जीवन में ऐश्वर्य और कल्याण सदा बनायें रखें ।

●

(पृष्ठ १६ का शेषांश)

श्री सुखदेव जी ने हर कदम पर पत्नी सुनीति जी को प्रोत्साहित किया जिसके फलस्वरूप सुनीति जी एक विख्यात आर्य गायिका, उपदेशिका एवं आचार्या के रूप में कार्य करती रहीं। श्री सुखदेव जी एक आदर्श पति बने रहे । ५ जनवरी २०१६ को सुनीति देवी जी ने इस संसार से विदा ली और केवल ३ महीने और ४ दिन बाद ९ अप्रैल को, सुखदेव जी उनसे स्वर्ग में जा मिले।

जहाँ भी सुखदेव जी रहे इनके रिश्तेदार हमेशा इनके सहारे आकर कई माह कई वर्ष इनके पास रहते रहे । सारे परिवार के लिये वह एक छाया वृक्ष की भाँति सदा सहारा देने वाले रहे।

अपने भ्राता श्री सत्यदेव विद्यालंकार और अपनी बहनों के परिवार के सभी सदस्यों के लिये सम्पूर्ण जीवन यदा कदा जैसा जब आवश्यक रहा ये करते रहे । सारा जीवन बिना किसी से कुछ लिये इन्होंने सबको खुले हाथों से बाँटा और दिया । एक आदर्श पुरुष की तरह, सुखदेव जी ने, परिवार में, समाज में, व्यवसाय में, अपने आप को सम्पूर्ण जीवन सेवारत रखा । बिरले ही ऐसे व्यक्ति संसार में मिलते हैं ।

इनकी तीन पुत्रियाँ, रश्मि, ज्योति और मनीषा और दो पुत्र पीयूष व शानुदेव अपनी भावभीनी श्रद्धान्जलि अर्पित करते हैं ।

—०—

आस्था का महाकुम्भ : कितना सार्थक, कितना उपयोगी

लेखक — **पं० योगेशराज उपाध्याय**

सिंहस्थ समाप्त हो चुका है, लगभग माहव्यापी उत्सव और उल्लास के पावन पर्व की सकुशल, बिना किसी विशेष दुर्घटना के समाप्ति, संतोष का हेतु है । लाखों श्रद्धालुओं ने पूर्ण आस्था और विश्वास से, पापों के शमन और पुण्य-लाभ की कामना एवं अपने कल्याण की भावना से कुम्भ-स्नान किया ।

किसी स्नान विशेष से पापों के धुल जाने या समाप्त हो जाने तथा विशेष दुर्लभ पुण्यार्जन का भाव आर्ष वैदिक परम्परा से मेल नहीं खाता । आर्ष सिद्धान्त तो बिलकुल स्पष्ट है कि 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं' । किये हुए शुभ-अशुभ सभी कर्मो का फल अवश्यमेव मिलता है । छोटे से छोटे, गौण से गौण, शुभ कर्म भी व्यर्थ नहीं होते । इसी तरह छोटे से छोटे पाप कर्म का भी फल अवश्य ही भोगना पड़ता है । अतः किसी विशेष दिन, किसी विशिष्ट मुहूर्त में, किसी विशेष स्थान पर, किसी विशेष जलाशय या नदी या समुद्र-तट पर स्नान करने से विशेष फलप्राप्ति या कृत पापों का नाश होना सिद्धांत विरुद्ध भी है और तर्क संगत भी नहीं है । किन्तु धर्म-भीरु जनसाधारण के मन से धर्म और आस्था के नाम पर खेलना एक वर्ग-विशेष ने अच्छे से सीख लिया है । किन्तु आज मेरा विमर्श इस पक्ष पर नहीं है । हमें इस पूरे परिदृश्य को एक सुअवसर की तरह देखने की जरूरत महसूस होती है ।

जिस किसी भी बहाने हो, किन्तु इस इतने बड़े पैमाने पर, इतने लम्बे समय तक, इतना विशाल जनसमूह एक स्थान पर एकत्रित रहे तो देश और समाज की परिस्थितियों, सम्मुखीन मुद्दों और समस्याओं पर विमर्श का एक दुर्लभ अवसर भी उपस्थित होता है । यह अवसर तब और भी सुअवसर बन जाता है जब वहाँ एकत्रित जनसमुदाय कुम्भ में उपस्थित संत-समाज के प्रति अति-आस्थावान होता है, अपितु अधिकांशतः अंध-श्रद्धा ही रखता है ।

भौगोलिक दृष्टि से भारत एक विशाल देश है । लगभग दो-दो हजार मील लम्बा-चौड़ा भूभाग, इतनी विभिन्न भाषाएँ, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नताएं और ये सब एक सनातन प्राचीन धर्म और जीवनशैली के सूत्र में पिरोई हुयी मणियाँ हैं । यह हमारा दुर्भाग्य है कि इस देश के संविधान को धर्म-निरपेक्ष घोषित करके धर्म को राष्ट्रीय जीवन और विमर्श से बहिष्कृत कर दिया गया । किसने किया, क्यों किया, किस स्वार्थ और परवशता में किया, क्या कुछ अलग करना या होना संभव था, यह अब बुद्धि-विलास का अलग विषय है किन्तु आज की परिस्थिति की सच्चाई यही है । भारतीय परम्परा में धर्म ही राजनीति का प्रेरक तत्व हुआ करता था किन्तु आज वेद उपनिषद् शास्त्रों को ही साम्प्रदायिक कहा जाने लगा है ।

सरल भाषा में कहा जाए तो धर्म तो सबका एक ही है — मानव धर्म, जो मनुष्य मात्र के लिये निर्विवाद रूप से हितकारी हो, वही धर्म है, सम्प्रदाय जरूर हमारे यहाँ सैकड़ों में हैं, धर्म ज्ञान, ऐश्वर्य,

वैराग्य तथा अर्थ, काम और मोक्ष का साधन एवं आधार भी है । धर्म जहाँ मुक्ति का पथ दिखलाता है, वहीं सम्प्रदाय एक सीमा में बाँध देता है । धर्म विस्तार देता है, सम्प्रदाय बहुत संकुचित कर देता है ।

आज सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि जो जिस सम्प्रदाय को मानता है, उसके अतिरिक्त और किसी की भी बात तक सुनने को तैयार नहीं है । ज्यादातर लोग अपने से इतर दूसरे सम्प्रदायों और मतों की आलोचना करने से परहेज नहीं करते किन्तु अधिकांशतः यह आलोचना अन्यों की मान्यताओं और ग्रंथों के गंभीर अध्ययन और समझ के बगैर ही की जाती है । कभी-कभी तो आलोचना की स्वस्थ मर्यादा की सीमाओं का अतिक्रमण भी हो जाता है । इस कट्टरवाद के शिकार न केवल जन-सामान्य अपितु बड़े बड़े धर्माचार्य भी हैं ।

धर्म के नाम पर राजनीति फल-फूल रही है । धार्मिक आयोजनों में भी राजनीति प्रवेश कर गई है । जातीयता हावी हो गयी है । नेता और सन्त एक जैसे हो गए हैं, बल्कि बहुत बार तो एक दूसरे के पर्याय हो जाते हैं । न राजनीति राष्ट्र-सेवा का माध्यम रह गयी है और न धर्म समाज-सेवा का हेतु रह गया है । नेता और सन्त लेने वाले हो गए हैं । देना भूल से गए हैं, संवेदनाएं कोसों दूर चली हैं और व्यापार भर ही रह गया है । धार्मिक प्रवचनकर्ता बाकायदे सौदा करने लगे हैं । कथा करानी है तो इतनी दक्षिणा देनी होगी । बाकायदे कॉन्ट्रैक्ट होता है । लाइव प्रसारण पर चरण छूकर प्रणाम करना है तो लिफाफा पकड़ाओं । साथ बैठकर नाश्ता या भोजन करना है तो तय रकम देनी होगी । रकम मुख्य हो गयी है, साथ बैठे व्यक्ति की पात्रता का कोई मतलब नहीं रह गया है । लोकतंत्र और धर्म (सम्प्रदाय) तंत्र, दोनों से ही उत्तरदायित्व का भावबोध विलुप्तप्राय है ।

अब प्रश्न यह उठता है कि देश में सैकड़ों या हजारों सम्प्रदाय हैं और उनके करोड़ों अनुयायी और समर्पित भक्तगण हैं । इस देश की परम्परा में प्रतिवर्ष चातुर्मास और प्रति चार वर्ष में बृहद स्तर पर कुम्भ मेले जैसे जन-समागम और परस्पर आदान-प्रदान का एक वातावरण सामाजिक व्यवस्था का अंग है । किन्तु इस पूरी व्यवस्था का कोई विशेष लाभ देश को नहीं हो रहा है । इस समय कालक्रम में देश और समाज को बहुत आवश्यकता इस बात की है कि दिशा-विहीन होते जा रहे जन-समुदाय को एक सुचिंतित और सुसंगठित व्यवस्था दी जाये । विशेषकर हर संत और साधु अपने-अपने सम्प्रदाय का होकर रह गया है । कुम्भ जैसे अति-पावन अवसर पर भी विभिन्न अखाड़ों की खींच-तान और कभी-कभी तो खूनी संघर्ष भी इसी बीमारी को इंगित करते हैं । अपने अहंकार के कारण यह सन्त समुदाय व्यवस्था का नेतृत्व न करके उस पर बोझ बनता जा रहा है । सफेद-काले और अन्य रंग के धनवाले और बड़े-बड़े राजनेता इनके यहाँ वी.आई.पी. बनकर जाते हैं और उन्हीं की चलती है । मीडिया भी अति-विशिष्ट हो गया है । सन्त लोकेषणा और वित्तेषणा में आकंठ डूबे दीखते हैं । आज का सबसे भीषण प्रश्न यह है कि देश में हर कोने में उपस्थित लाखों संतों के बावजूद देश में, कहीं भी धर्म का वैशिष्ट्य दिखाई नहीं देता । कुछेक अपवाद हो सकते हैं किन्तु अपवाद भी मूल अवधारणा की पुष्टि ही करते हैं । सन्त-समाज का यह ह्रास किस बात का परिचायक है ? आज स्थिति यह है कि

सम्प्रदाय के बड़ा सन्त जो करे वही अनुकरणीय धर्म हो जाता है । महाकुम्भ के बाद सारा सन्त-समाज आशीर्वाद का हाथ उठाकर अपने-अपने मठों को चला गया है । किन्तु क्या उज्जैन और मध्यप्रदेश के जीवन में कोई मूलभूत बदलाव आया ?

कुम्भ मेलों में आचार्यों की एक परिषद् होती है । उसे उचित है कि वह संतों की परिभाषा और उनके आचरण की मर्यादा और सीमायें तय करे । प्रत्येक कुम्भ के प्रारम्भ में ही यह परिषद् यह स्थिर करके घोषणा करे कि कुम्भ में पधारे साधु-संत-विद्वान् और आचार्य समाज, देश और विश्व की किन-किन समस्याओं पर मंत्रणा करेंगे । देश-विदेश के कौन-कौन से विशेषज्ञ इन मंत्रणाओं में हिस्सा लेंगे। जिस शहर और प्रदेश में यह आयोजन हो रहा है उसके वासियों को क्या विशेष लाभ मिलेगा या उनके विशेष हित की क्या व्यवस्थाएँ की जायेंगी । बच्चों, महिलाओं, युवाओं को सुसंस्कार और शिक्षित करने की विशेष योजनायें और व्यवस्थाओं की परिकल्पना और इन परिकल्पनाओं के क्रियान्वयन पर निर्णय होने चाहिये । धर्म को शास्त्रों की पवित्र पुस्तकों से बाहर निकालकर दैनन्दिन जीवन में उतारने की प्रेरणा और उपायों पर विस्तृत चर्चाएँ हों, यह एक तरीका है समाज के ऋण को किसी हद तक चुकाने के प्रयास का, पर्यावरण, नैतिक मूल्यों, पारिवारिक मूल्यों पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए । यह निर्विवाद है कि ऐसे आयोजनों में आने वाली जनता सन्त-समुदाय के विशेष प्रभाव में रहती है । सरकारें जो काम करने में कठिनाई अनुभव करती हैं, यह सन्त समाज अपने अनुयायियों की निष्ठा के कारण अनेक कार्य सहज ही कर सकता है ।

शिक्षा और विकास की वर्तमान अवधारणा के कारण जीवन में जो कमी आती है उसे धर्म ही पूरा करता है । धर्म आत्मा का विषय है, जो शिक्षा का विषय नहीं है । अतः कुम्भ या ऐसे आयोजनों की समाप्ति से पूर्व ही यह भी आकलन होना चाहिए कि समाज के रूपांतरण का कितना कार्य हो पाया और पिछले अनुभवों के हिसाब से कितना अभीष्ट रह गया है । यदि लक्ष्य सुस्पष्ट निर्धारित हों तो प्राप्त भी किया जा सकते हैं । आस्था एक ऐसा अस्त्र है जो सरकार की व्यवस्थाओं से दुष्प्राप्य लक्ष्यों को संतों के माध्यम से सहजता से प्राप्त किया जा सकता है । यह भी देखना चाहिए कि संन्यास के नाम पर कुछ भी कर रहे संन्यासियों के आचरण की भी मर्यादा तय हो । संन्यासियों के लिए भी राजनीति और सत्ता से जुड़ने का लोभ संवरण कठिन होता है पर इस पर नियंत्रण अति आवश्यक है ।

आज सवाल नयी पीढ़ी के सामने है । धर्म की वैज्ञानिकता को समझ, प्राकृतिक संतुलन और सामंजस्य और सामाजिक सौहार्द्र और दिशा-निर्धारण के प्रति निष्ठा और समर्पण की पृष्ठभूमि की कसौटी पर कस कर ही संतों का अनुसरण करना समीचीन है । सन्त सच में सन्त हों और समाज को निःस्वार्थ भाव से सेवा देने की संन्यास की मूल भावना के अनुरूप आचरण करने वाला हो, यही अभीष्ट है और तभी इन बृहद आयोजनों की सार्थकता और वर्तमान समय में उनके आयोजनों की उपयोगिता होगी ।

—o—

आचार्य पंडित ऋषिराम जी

आचार्य पं० ऋषिराम जी का आर्यसमाज कलकत्ता और कलकत्ता शहर से बड़ा स्नेहिल मधुर सम्बन्ध रहा है। आर्य समाज कलकत्ता और आर्यसमाज भवानीपुर में आपके सत्संग निरन्तर हुआ करते थे। काफी दिनों तक कलकत्ता के साथ आपका निरन्तर सम्बन्ध बना रहा है। आचार्य पं० ऋषिरामजी का जन्म सन् १८९३ ई० में अम्बाला जिले के रायपुररानी कस्बे के एक वैश्य परिवार में हुआ था। अपने अध्ययन के क्रम में आपने डी०ए०वी० कॉलेज लाहौर में प्रवेश लिया। वहीं प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य पं० विश्वबन्धु जी आपके सहाध्यायी बने। दोनों साथी महात्मा हंसराज जी के सम्पर्क में आये और दोनों ने वैदिक सेवा-साधना का मार्ग पकड़ लिया। आचार्य ऋषिराम जी ने सन् १९१७ ई० में बी०ए० पास किया और तभी से डी०ए०वी० कालेज सोसाइटी के आजीवन सदस्य बन गये।

आचार्य ऋषिराम जी में जहाँ विद्या थी, सफल उपदेशक भाव था, वहीं समाजसेवा की भावना भी प्रबल थी। २०वीं शताब्दी के प्रथम चरण में दक्षिण भारत, केरल में कुछ उपद्रव हुए, जिसमें मोपला काण्ड बड़ा हृदय विदारक था। आचार्य ऋषिराम जी छुआछूत के निराकरण और समाज सुधार के कार्य को लेकर जनसेवा की भावना से केरल चले गये। वहीं से आपने पूर्वी अफ्रीका की भी यात्रा की। पं० ऋषिराम जी जितनी सफलता से भारतवर्ष में प्रचार कर रहे थे, वैसी ही सफलता से पूर्वी अफ्रीका में भी वेदधर्म का प्रचार किया।

सन् १९३० ई० से सन् १९३४ ई० तक आपने कलकत्ता को अपना प्रधान कार्यकेन्द्र बनाया। यहाँ से आप बंगाल, आसाम आदि में प्रचार कार्य करते रहे। आर्यसमाज कलकत्ता और आर्य समाज भवानीपुर तो इनके उपदेशों के केन्द्र थे ही, साथ ही अन्य समाजों, वृहत्तर कलकत्ता और सुदूर आसाम इत्यादि स्थानों पर धर्म प्रचारार्थ आपका आना-जाना बना रहता था। ऋषिराम जी मृदुभाषी, प्रभावशाली वक्ता थे। जीवन-आचार, यज्ञ, सन्ध्या इत्यादि के साथ ही उपनिषदों की बडी हृदयग्राही व्याख्या करते थे। कलकत्ता के पुराने लोग आचार्य ऋषिरामजी की मधुर स्मृति को आज भी याद करते हैं।

कलकत्ता छोड़ने के पश्चात् भी बीच-बीच में आप कलकत्ता आते रहते और अपने आध्यात्मिक प्रवचन से यहाँ की जनता को तृप्त करते रहते। सन् १९३६ ई० में आप फिर विदेश गये। विदेशों में बसे भारतीयों को भारतीय संस्कृति के सम्पर्क में बनाये रखना आपका मुख्य कार्य था। आचार्य ऋषिरामजी के जीवन में एक जीवनीय आकर्षण था। बड़ा सरल-सा जीवन, किन्तु आध्यात्मिक भावना से ओतप्रोत था। इनके भीतर की आध्यात्मिक साधना सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती थी। पंडितजी जीवनोपयोगी सत्य को वेदमन्त्रों के सहारे बड़े आकर्षक ढंग से जनता के बीच उपस्थित करते थे। ७७ वर्ष की आयु में सन् १९७० ई० में पण्डित ऋषिरामजी का देहावसान हो गया।

(आर्य समाज कलकत्ता के शतवर्षीय इतिहास से)

–०–

स्वामी जी का स्वकथित जीवन-चरित्र

प्रथम भाग

अध्याय-२

(सन् १८२४ ई० से १८७५; तदनुसार सं० १८८१ से १९३१ वि० तक)

बचपन : वैराग्य : गृहत्याग व संन्यास

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म फाल्गुन कृष्ण पक्ष दशमी को गुजरात में संवत १८८१ में हुआ था । पूरे भारतवर्ष में स्वामी जी का जन्म दिवस मनाया जाता है इसी अवसर पर आर्य समाज कलकत्ता ने निर्णय किया कि पं० लेखराम द्वारा संकलित एवं आर्य महामहोपदेशक कविराज श्री रघुनन्दन सिंह निर्मल द्वारा अनूदित महर्षि स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र धारावाहिक प्रकाशित किया जाय, इसी शृंखला में प्रस्तुत है यह धारावाहिक जीवन-चरित्र — सम्पादक

(गतांक से आगे)

नैष्ठिक ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य बने, दूसरे नकली वैरागी से बचे – तत्पश्चात् लाला भक्त के स्थान में जो सायले ग्राम में है (यह ग्राम अहमदाबाद-मोरवी रेलवे के स्टेशन मोली से चार कोस और आर्यसमाज कस्बा रानपुर से ११ कोस है) यहाँ बहुत साधुओं को सुनकर चला गया । उस स्थान पर एक ब्रह्मचारी मिला, उसने कहा कि तुम नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो जाओ और उसने मुझे ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी और शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी मेरा नाम रखा और मेरे पहले वस्त्र उतरवा कर अपने समान मुझे कषायवस्त्र कराकर गेरुआ कुर्त्ता पहना दिया और हाथ में एक तूँबा दे दिया और मैं उनके थोक (समूह) में मिल गया और वहाँ योगसाधन करने लगा । रात को जब एक वृक्ष के नीचे बैठा था ऊपर पक्षियों ने घू-घू करना आरम्भ किया । सुनकर मुझे भूत का भय लगा और मैं पीछे मठ में आ गया । इस नये वेष में वहाँ से चलकर कोट कांगड़ा नामक एक छोटे से कस्बे में (जहाँ छोटा-सा राज्य भी है), जो अहमदाबाद, गुजरात के समीप है, आया । वहाँ बहुत से वैरागी थे और कहीं की रानी भी उनके फन्दे में फसी हुई थी, उन्होंने मेरे वेष को देखकर ठट्ठा करना प्रारम्भ किया और मुझे अपने में फाँसने लगे परन्तु मैं उनके फन्दे से छूटकर भागा । रेशमी किनारे की धोतियाँ उन्हीं वैरागियों के कहने से वहाँ फेंक दीं और तीन रुपये पास थे उन्हें खर्च करके साधारण धोतियाँ लीं और वहाँ ब्रह्मचारी नाम से प्रसिद्ध रहा । मैं वहाँ तीन मास रहा था ।

सिद्धपुर के मेले में, अपनी भूल से पिता की कैद में – कोट काँगड़े में मैंने सुना कि सिद्धपुर में कार्तिक का मेला होता है वहाँ कोई तो योगी अपने को मिलेगा और अमर होने का मार्ग बता देगा इस

आशा से मैंने सिद्धपुर की बाट पकड़ी । मार्ग में मुझे थोड़ी दूर पर पास के एक ग्राम का रहने वाला वैरागी मिला जो हमारे कुल से भली-भांति परिचित था । उसको देख कर जैसे कि मेरा हृदय उमड़ कर नेत्र भर आये वैसी ही उसकी दशा देखने में आई । जब उसने मेरा सम्पूर्ण वृत्तान्त पास के धनादि का ठगा जाना और साहेला (सायेला) ग्राम के ब्रह्मचारी के पास मुंडना सुना और गेरुआ कुर्ता देखा तो प्रथम कुछ हँसा, पीछे उसने मुझ को अतीव खेद के साथ घर से निकल आने पर धिक्कारा और पूछा कि क्या घर छोड़ दिया ? मैंने उसकी पहली भेंट के कारण स्पष्ट कह दिया कि हाँ, घर छोड़ दिया और कार्तिक के मेले पर सिद्धपुर (सिद्धपुर स्वयं रेलवे स्टेशन है और वहां सरस्वती नदी के तट पर कार्तिक का मेला होता है और औदीच्य ब्राह्मणों के लड़कों का मुंडन भी वहां होता है) जाऊँगा यह कह कर मैं वहाँ से चल दिया और सिद्धपुर में आकर नीलकंठ महादेव के स्थान में ठहरा कि जहाँ पर दण्डी स्वामी और बहुत ब्रह्मचारी पहले से ठहरे थे, उनका सत्संग और जो कोई महात्मा विद्वान् पंडित मेले में मिला उससे मेल-मिलाप किया, वार्ता की और दर्शन से लाभ उठाया । इस अन्तर में उस पड़ोसी वैरागी ने जो कोटकांगड़े में मुझको मिला था जाकर मेरे पिता के पास एक पत्र भेजा कि तुम्हारा लड़का कषायवस्त्र धारण किये ब्रह्मचारी बना हुआ यहाँ मुझको मिलकर कार्तिकी मेले में सिद्धपुर को गया है ।

ऐसा सुनकर तत्काल मेरा पिता चार सिपाहियों सहित सिद्धपुर को आया । मेले में मेरा पता लगाना आरम्भ किया । एक दिन उस शिवालय में जहाँ मैं उतरा था प्रातःकाल एकाएक मेरे बाप और चार सिपाही मेरे सम्मुख आ खड़े हुए । उस समय वह ऐसे क्रोध में भरे हुए थे कि मेरी आँख उनकी ओर नहीं होती थी । जो उनके जी में आया सो कहा और मुझे धिक्कारा कि तूने सदैव को हमारे कुल को दूषित किया और तू हमारे कुल को कलंक लगाने वाला उत्पन्न हुआ ।

मेरे मन में आतंक बैठ गया कि कदाचित् मेरी कुछ दुर्दशा करेंगे । इस डर से मैंने उठकर उनके पाँव पकड़ लिये । मेरा पिता मुझ पर बहुत क्रुद्ध हुआ ।

पिता से डर कर असत्य भाषण, परन्तु ध्यान फिर भी भागने में रहा – मैंने प्रार्थना की कि मैं धूर्त लोगों के बहकावे में आकर इस ओर निकल आया और अत्यन्त दुःख पाया । आप शान्त हों, मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये । यहाँ से मैं घर आने को ही था, अच्छा हुआ कि आप आ गये हैं । आपके साथ ही चलने में प्रसन्न हूँ । इस पर भी उनका कोपाग्नि शान्त न हुआ और झपट कर मेरे कुर्त्ते की धज्जियाँ उड़ा दीं और तूँबा छीन कर बड़े जोर से धरती पर दे मारा और सैकड़ों प्रकार से मुझे दुर्वचन कहे और दूसरे नवीन श्वेत वस्त्र धारण कराकर जहाँ ठहरे थे वहाँ मुझको ले गये और वहाँ भी बहुत कठिन-कठिन बातें कहकर बोले कि तू अपनी माता की हत्या किया चाहता है । मैंने कहा कि अब मैं चलूंगा तो भी मेरे साथ सिपाही कर दिये और उन्हें कह दिया कि कहीं क्षण भर भी इस निर्मोही को पृथक् मत छोड़ो और इस पर रात्रि को भी पहरा रखो परन्तु मैं भागने का उपाय सोचता था और अपने

निश्चय में वैसा ही दृढ़ था जैसे कि वे अपने यत्न में संलग्न थे । मुझको यही चिन्ता थी और इसी घात में था कि कोई अवसर भागने का हाथ लगे ।

भागने का अवसर मिल गया, स्वजनों से अन्तिम भेंट – दैवयोग से तीसरी रात्रि के तीन बजे पीछे पहरे वाला बैठा-बैठा सो गया । मैं उसी समय वहाँ से लघुशंका के बहाने से भागकर आध कोस पर एक बागीचे के मन्दिर के शिखर में एक वटवृक्ष के सहारे से चढ़कर जल का लोटा साथ लेकर छुपकर बैठ गया और इस प्रतीक्षा में रहा कि देखिये अब दैव क्या-क्या चरित्र दिखाता है और सुनता रहा कि सिपाही लोग जहां-तहां मुझको पूछते-फिरते हैं और बड़ी सावधानी से उस मन्दिर के भीतर-बाहर ढूंढ रहे हैं और वहां के मालियों से मुझको पूछा और खोजते-खोजते असफल तथा निराश ही हो गये कि इस ओर की खोज वृथा है, विवश होकर वहां से लौट गये । परन्तु मैं उसी प्रकार अपने श्वास को रोके हुए दिन भर उपवास करता हुआ वहीं बैठा रहा । इस विचार से कि किसी नवीन आपत्ति में न फंस जाऊँ । जब अन्धकार हुआ तब रात के सात बजे उस मन्दिर से नीचे उतर कर सड़क छोड़ किसी से पूछ वहाँ से दो कोस एक ग्राम था, वहां जाकर ठहरा और प्रातःकाल वहां से चला । इसीको अपने ग्राम के या घरके मनुष्यों की अन्तिम भेंट कहा जाये तो अनुपयुक्त नहीं होगा । इसके पश्चात् एक बार प्रयाग में मेरे ग्राम के कुछ लोग मुझको मिले थे परन्तु मैंने पहचान नहीं दी । उसके पश्चात् आज तक किसी से भेंट नहीं हुई ।

(कार्तिक में सिद्धपुर आये और तीन मास कोटकांगड़ा में रहे और एक मास के लगभग वहां लाला भक्त के ग्राम साहिला (सायला) में रहे । पांच-सात दिन का मार्ग है इस हिसाब से विदित होता है कि स्वामी जी जेठ संवत् १९०३ वि० के अन्त में तदनुसार मई, सन् १८४६ को घर से निकले थे ।) .

वेदान्ती संन्यासियों की संगति में जीव-ब्रह्म की एकता का निश्चय – अहमदाबाद से होता हुआ बड़ौदा नगर में आकर ठहरा और चेतनमठ में ब्रह्मचारियों और संन्यासियों से वेदान्त विषय पर बहुत बातें कीं । मुझको ऐसा निश्चय उन ब्रह्मानन्द आदिक ब्रह्मचारियों और संन्यासियों ने करा दिया कि ब्रह्म हमसे कुछ पृथक नहीं । मैं ब्रह्म हूँ अर्थात् जीव और ब्रह्म एक हैं । यद्यपि प्रथम ही वेदान्त शास्त्र के पढ़ते समय मुझको कुछ इस बात का विचार हो गया था परन्तु अब तो मैं इसके अच्छी प्रकार समझ गया ।

नर्मदा तट तथा आबू पर्वत पर अनेक सच्चे योगियों से योग की शिक्षा

चाणोद कन्याली में प्रथम बार सच्चे दीक्षित विद्वानों से अध्ययन – बड़ौदा में एक बनारस के रहने वाली बाई से मैंने सुना कि नर्मदा तट पर बड़े-बड़े विद्वानों की एक सभा होने वाली है यह सुनकर मैं तुरन्त उस स्थान को गया । पहुँचने पर एक सच्चिदानन्द परमहंस से भेंट हुई और उनसे अनेक प्रकार की शास्त्रविषयक बातें हुई अर्थात् उनसे भिन्न-भिन्न विद्या सम्बन्धी विषय में बातचीत हुई । फिर उन्हीं

से ज्ञात हुआ कि आजकल चाणोद कन्याली (जो नर्मदा नदी तट पर स्थित है) में बड़े उत्तम विद्वान् ब्रह्मचारियों और संन्यासियों की एक मंडली रहती है यह सुनकर उस स्थान को गया जहाँ मेरी मानो प्रथम बार ही सच्चे दीक्षित विद्वानों और चिदाश्रम आदि स्वामी-संन्यासियों और कई एक ब्रह्मचारियों, पंडितों से भेंट हुई और अनेक विषयों पर परस्पर संलाप हुआ । पश्चात् मैं परमानन्द नामक परमहंस के पास पढ़ने लगा अर्थात् उनका शिष्य बन गया और उनके साथ रहकर कुछ महीनों में वेदान्तसार, आर्य हरि मेडीतोटक, आर्यहरिहरतोटक, वेदान्तपरिभाषा आदि और (दर्शन शास्त्र) फिलासफी की पुस्तकें अच्छी प्रकार पढ़ीं ।

संन्यास लेने का प्रमुख कारण, पूर्णानन्द के शिष्य दयानन्द बने – चूँकि मैं इस समय तक ब्रह्मचारी था इसलिए मुझको अपना खाना अपने हाथ से पकाना पड़ता था । जिसके कारण मेरे अध्ययन में बड़ी बाधा पड़ती थी । इसी कारण इस बखेड़े से छूटने के लिए मैंने निश्चय किया कि यथाशक्ति प्रयत्न करके संन्यासाश्रम की चतुर्थ श्रेणी में प्रविष्ट हो जाऊँ । इसके अतिरिक्त मुझको यह भय भी था कि यदि मैं ब्रह्मचर्य्याश्रम में बना रहा तो किसी दिन अपने कुल की प्रसिद्धि के कारण घर वालों के हाथ पकड़ा जाऊँगा क्योंकि मेरा अभी तक वही नाम प्रसिद्ध है जो घर में था किन्तु जो संन्यासाश्रम ले लूंगा तो यावत्-अवस्था (जीवन भर के लिए) निश्चिन्त हो जाऊँगा ।

एक दक्षिणी पंडित के द्वारा (जो मेरा बड़ा मित्र था) चिदाश्रम स्वामी से कहलाया कि आप उस ब्रह्मचारी को संन्यास की दीक्षा दे दीजिए, परन्तु उस महाराष्ट्र संन्यासी ने जो परम-दीक्षित थे मुझको संन्यास देने से स्पष्ट इन्कार कर दिया । इसलिए कि यह अभी नवयुवक है और कहा कि हम संन्यास नहीं देते, तथापि मेरा उत्साह भंग नहीं हुआ । लगभग डेढ़ मास तक नर्मदा तट पर रहा, इसके अनन्तर मेरी आयु के चौबीसवें वर्ष दो महीने के पीछे दक्षिण से एक दंडी स्वामी और एक ब्रह्मचारी आकर चाणोद ग्राम से कुछ कम कोस अथवा दो मील की दूरी पर जंगल-स्थित एक घर में ठहरे । उनकी प्रशंसा सुनकर परम मित्र पूर्वोक्त दक्षिणी पंडित मेरे साथ गये । वहां उन महात्माओं से ब्रह्मविद्या के कई विषयों में बातचीत हुई तो जान पड़ा कि ये दोनों इस विद्या में अत्यन्त प्रवीण हैं । संन्यासी जी का नाम पूर्णानन्द सरस्वती था । उनसे मैंने इच्छा पूर्ण करने के लिए सिफारिश करने को अपने मित्र की ओर संकेत किया और उन्होंने अच्छी प्रकार कहा कि महाराज ! यह विद्यार्थी सुशील और ब्रह्मविद्या पढ़ने की अत्यन्त कामना रखता है परन्तु रोटी पानी के बखेड़ों के मारे इच्छानुसार विद्योपार्जन नहीं कर सकता, आप कृपा करके इसकी लालसा के अनुसार चौथे प्रकार का संन्यास दे दीजिये । यह सुनकर और मेरी नवयौवनावस्था देखकर उनका भी जी हटा परन्तु जब मेरे मित्र ने बहुत कुछ कहा सुना तब बोले ऐसा ही है तो किसी गुजराती संन्यासी से कहिये क्योंकि हम तो महाराष्ट्री हैं । तब उस मित्र ने कहा कि दक्षिणी स्वामी गौड़ों को भी संन्यास देते हैं जो पंच

द्रविड़ों से बाहर हैं। यह ब्रह्मचारी तो गुर्जर अर्थात् गुजराती है जो पंच द्रविड़ों में है। इसमें क्या चिन्ता है। तब उन्होंने मान लिया और अतिप्रसन्न हुए और मुझको तीसरे दिन श्राद्धादि कराकर चौबीस वर्ष की अवस्था में संन्यास दे दण्ड ग्रहण कराया और मेरा नाम दयानन्द सरस्वती रखा। उनकी आज्ञा लेकर मैंने दण्डस्थापन कर दिया क्योंकि उसके सम्बन्ध से बहुत कुछ कर्त्तव्य होता था कि जिससे पढ़ने में असुविधा होती थी। (स्वामी जी उनके पास कुछ दिन ब्रह्मविद्या की पुस्तकें पढ़ते भी रहे। ये महात्मा संन्यासी व ब्रह्मचारी शंकराचार्य के श्रृङ्गी मठ नामक स्थल से, जो दक्षिण में है, चलकर द्वारका को जाने की इच्छा से आये थे)। बस, संन्यास देने के कुछ काल पश्चात् स्वामी जी द्वारका की ओर चले गये और मैं कुछ समय तक चाणोद कन्याली में ठहरा रहा।

विभिन्न स्थानों पर गुरुओं द्वारा योगसाधन की क्रियात्मक शिक्षा (संवत्-१९०६ वि०) जब यह सुना कि व्यासाश्रम में योगानन्द नामक एक स्वामी रहते हैं, वे योगविद्या में अति निपुण हैं तो शीघ्र वहाँ पहुँचा और उनके पास योगविद्या पढ़ने लगा और उसके आरम्भ के सब ग्रन्थ अच्छी प्रकार पढ़कर और क्रिया सीख कर चित्तौड़ नगर को गया क्योंकि एक कृष्णशास्त्री चितपावन दक्षिणी ब्राह्मण उसके आसपास में रहते थे। उनके पास जाकर कुछ व्याकरण का अभ्यास करके फिर चाणोद कन्याली में आकर ठहरा और राजगुरु से वेदों को सीखा और वहाँ कुछ समय तक निवास किया। वहाँ कुछ दिन पीछे ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि नामक दो योगियों से भेंट हुई। उनके साथ योग का साधन किया और हम तीनों मिलकर सदैव योगशास्त्र की चर्चा करते रहे। फिर वे दोनों योगी अहमदाबाद को चले गये और मुझको आज्ञा दे गये कि एक मास के पीछे तुम हमारे पास आना। हम तुमको उस स्थान पर योगसाधन के पूरे-पूरे तत्व और उसकी सब विधियाँ अच्छी प्रकार समझा देंगे। हम वहाँ नदी के ऊपर दुग्धेश्वर महादेव में ठहरेंगे। फिर एक मास पश्चात् उनकी आज्ञा के अनुसार अहमदाबाद के पास दुग्धेश्वर महादेव के मन्दिर में उनसे जाकर मिला जहाँ उन्होंने योग विद्या के अत्यन्त सूक्ष्म तत्वों और उसके प्राप्त करने की विधि बताने की प्रतिज्ञा की थी। वहाँ उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की और अपने वचनानुसार मुझको निहाल कर दिया अर्थात् उन्हीं महात्मा योगियों के प्रभाव से मुझको पूर्ण योगविद्या और उसकी साधन क्रिया अच्छी प्रकार विदित हो गई। इसलिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। वास्तव में उन्होंने यह मुझ पर बड़ा ही उपकार किया जिसके कारण मैं उनका अत्यन्त ही आभारी हैं। इसके पश्चात् मुझको विदित हुआ और सुना कि राजपूताने में आबू पर्वत की चोटियों पर बड़े-बड़े उत्तम योगिजन निवास करते हैं। इसलिए उनकी प्रशंसा सुन उस ओर चल दिया। वहाँ जाकर उनकी खोज करता हुआ अर्बुदा भवानी गिरि नामक चोटी पर और अन्य स्थानों पर योगिराजों से जा मिला। ये उन महात्माओं से अधिक ज्ञानी तथा विद्वान् थे। उनसे और भी विशेष योगसाधन के सूक्ष्म तत्वों को प्राप्त किया।

(क्रमशः)

श्रीराम का शील, शक्ति और सौन्दर्य

– परीक्षित मंडल ''प्रेमी''

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का दाक्षिण्यमय चरित्र अप्रतिम शील, आसमन्तात् भवतीति शक्ति और अनिंद्य सौन्दर्य की अगाध त्रिवेणी है । स्वस्तिप्रद स्वभाव की समुज्ज्वलता और स्वाभाविक सर्वात्म भाव सुकुमारता को शील कहते हैं । यह धर्म का सर्वोत्कृष्टतम रूप तो है ही, विमल हृदय की स्थायी स्थिति भी है । प्रयत्न करके भी श्रीराम अपने स्वभावगत शील का त्याग नहीं कर सकते । विरोधी के दुराचार और अत्याचार से भी जिसमें विकार नहीं आ सके, व्यापक फलक पर वही सर्वोच्च शील कहलाता है । इसलिए कवीश्वर तुलसीदास मानस में श्रीराम को शीलसिन्धु से विभूषित करते हैं । चित्रकूट में राम जब अपने गुरु वसिष्ठ जी से मिलने के लिए चलते हैं, तब तुलसीदास लिखते हैं – **सीलसिंधु सुनि गुरुआगवनु । सिय समीप राखे रिपुवदनु** । इसी प्रकार श्रीराम के जीवन में अथ से इति पर्यन्त अर्थात् अयोध्या की क्रीड़ाभूमि में, जनकपुर की सुरम्य रंगभूमि में, कानन की ललित लीलाभूमि में और लंका की समरभूमि में भी इनके लोकोत्तर शील की बाँकी – झाँकी हमें बराबर मिलती है । इसीलिए श्रीराम के शील के प्रति ऋषि-मुनियों की, संत-महात्माओं की यानी समस्त मानवता की युग-युगान्तर से आस्था चली आ रही है । राम अपने शील से हिमालय से उत्तुंग दिखते हैं । इनकी समग्र शील की उपलब्धि से हमारा गौरव ऊपर उठता है और चाँद-सूरज को छूने लगता है । श्रीराम के अद्भुत जीवट व्यक्तित्व में शील तत्व का समावेश करते हुए संत महाकवि तुलसीदास ने इन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया है । रावण का विधिवत् श्राद्ध कराने का परामर्श ये विभिषण को देते हैं । राम का यह कर्त्तव्य इनका स्वभावज शील का धर्म है । जीवन के सभी क्षेत्रों में इन्होंने अपने गरिमामय शील की विशिष्टता का निरन्तर परिचय दिया है । यही कारण है कि इनके अप्रतिम सुषमामय और मधुमय शील के समक्ष भार्गविय परशुराम का तिग्मतेज धूमिल पड़ जाता है । महाप्रज्ञ तुलसी ने राम के शील विकास के इतने आयाम दिए हैं कि इन्हीं के अमित बल पर वे मर्यादा पुरुषोत्तम की महनीय शक्ति से विभूषित हो जाते हैं । इन्होंने अपने शील से अयोध्या को ही महिमा मंडित नहीं किया है, बल्कि संपूर्ण मानव समाज को महिमान्वित किया है ।

पुनः शक्ति तत्व का समायोजन भी राम के विराट व्यक्तित्व में अपरिमित रूप से प्रदीप्तमान हुआ है । श्रीराम ने जनकपुर में जिस धनुष को बड़े-बड़े विभ्राट वीर योद्धा और महाबली राजा भी परिश्रम करके नहीं हिला सके, उसी को श्रीराम ने अनायास ही उठाकर तोड़ दिया । पंचवटी में चौदह हजार सुभट भट, विकट भट, दारूनभट और महाभट राक्षसों को जरा-सी देर में ही बिना किसी की सहायता के मार गिराया । पुनः वानरराज बालि जैसे महायोद्धा को एक ही वाण से मार डाला । धनुष पर वाण चढ़ाने मात्र से ही समुद्र में खलबली मच गई और वह सशरीर भयभीत होकर शरण में आ गया । इस

प्रकार श्रीराम की विराट शक्ति का अद्भुत चमत्कार पूरे मानस में उपलब्ध होता है । परन्तु राम की वह ज्योति तरंगित शक्ति विध्वंसकारी न होकर लोक कल्याणकारी और स्वस्तिप्रद आदर्शों का नियामक है । यशस्वी महाकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस में राम के अनेक दिगन्त—फलक, कमनीय क्रिया कलाप तथा भूयसी भूषित शक्ति का प्रकाशन किया है । इस संदर्भ में वे सुबाहुवध, तारकावध, धनुषभंग, परशुराम तेज मर्दन, विराधवध, खर-दूषणवध, कबन्धवध, बालिवध, कुम्भकरणवध एवं असुराधिप रावणवध को विराट फलक पर उपस्थापित करते हैं । इन्होंने मानव कल्याण के लिए ही शान्तिधातिनी आसुरी शक्ति से लोहा लिया है । इनके दिनमणि—सम भास्वर पराकॉस्किम शक्ति के समक्ष दुःखदायिनी रावण की आसुरी शक्ति तिरोहित हो गई ।

इसी प्रकार तुलसीदास ने राम को मानस में अप्रतिम सौन्दर्य की अद्भुत ज्योति से विभूषित करते हुए चित्रित किया है । वे सौन्दर्य के अगाध महार्णव हैं और निर्विकार शोभा के गरिमामय अतलात सिन्धु है । एक शिशु के रूप में इनका सौन्दर्य-सुषमा अपरिमित है । किशोरावस्था में इनकी अद्भुत ज्योतिरसि छवि को देखकर महामुनि विश्वमित्र तक विस्मित रह जाते हैं । विदेह नगरी में प्रवेश के समय इनके ज्योति धवल दिव्य रूप और सुषुमामय सौन्दर्य को देखकर सभी मिथिलावासी विमोहित हो जाते हैं। धनुषभंग के समय परशुराम श्रीराम के सौन्दर्यरस सिन्धु में निमज्जित्त हो जाते हैं । पुनः पावन परिणय के अवसर पर प्रजापति इन्द्र और सदाशिव भी सुषमानिधि राम के अतुलनीय सौन्दर्य को निर्निमेष नयनों से निहारते रह जाते हैं । कहते हैं — इस रूप में राम की अप्रतिम सौन्दर्य भूषित छटा देवोपम है । तभी तो महाकवि तुलसीदास ने लिखा है — **''कोटि मनोज लजावनिहारे ।''** अर्थात् करोड़ों कामदेव जिसको देखकर लजा जाते हैं । पुनः **नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक** । अर्थात् जिनका नीले कमल के समान शरीर है, जिनकी शोभा करोड़ों कामदेवों से भी अधिक है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राम के शालप्रांशु व्यक्तित्व तथा कमनीय चरित्र में शील, शक्ति और सौन्दर्य सभी परमोदात्तगुण और महतोमहीयान मानवीयमूल्य पूर्णरूपेण सन्निहित हैं । कहा जा सकता है कि राम के अवतरण से वर्तमान और भावी मानवों को अमृत-ऊर्जा आलोक मिला तथा प्रखर अनल शीतल धवलधार होकर प्रकट हुई और मर्त्य-तिमिर सिन्धु में अमर्त्य आलोक किरण प्रोद्धासित हुई है । इस प्रकार अक्षर पुरुष राम की जीवन पूर्णता में तीन तत्वों का समवाय संचारित हुआ दिखता है, जो अन्यत्र दुर्लभ ही है । इसलिए राम पुरुषों में मर्यादा पुरुषोत्तम हैं । इन्होंने शारीरिक शक्ति, ऊर्ध्वगत मानसिक प्राणतत्व और पराकॉस्मिक आध्यात्मिक अनुशासन या संयम से कतई पलायन नहीं किया, बल्कि इन्होंने मर्यादित एवं मनुजोचित परमोदात्त गुणों से रूढ़ियों का उन्मूलन किया तथा संकीर्ण जीर्ण विचार पर्णों को धराशायी कर निखिल भुवन में नवजीवन दायक शीतल चन्द्र कौमुदी को प्रदीप्त किया । इन्होंने उदयाचल से अस्ताचल तक ससागरा पृथिवी के त्रस्त मानवों को महामहिम गरिमा से मुकुलवान किया । क्योंकि असुराधिप रावण के भीषण उत्पीड़न, निष्ठुर अन्याय, दारून पदाघात और

दमन ताण्डव नर्तन से लोक-लोकान्तर भयाक्रान्त होता जा रहा था । इन्होंने ऐसी विषादपूर्ण कुहेलिका और शांतिघातिनी छद्मनीति को विच्छिन्न किया और अपनी मनुजोचित संयमित सरलता तथा सर्वतोभद्र नैतिकता से निखिल भुवन की सृजन चेतना के प्रतिनिधि बनकर स्वस्तिप्रद आदर्शों की स्थापना की । इन्होंने हर कल्मष कुहेलिका पर अपना सौन्दर्य और ज्योति तरंगित चेतना शक्ति को संचारित किया। इन्होंने असुन्दर को सुन्दर बनाया तथा दानवता को मानवता से मंडित किया । इनकी विमलवाणी के ध्वनि निनाद से मूक भी वाचाल हो उठे और न जाने कितने तापित और शापित जन एवं शिलाखण्ड मधुमय पुण्यों के प्रभाव से सुमनरयमान बन गए ।

इनके सृजनात्मक सामर्थ्य ने तद्युगीन अन्तर्विग्रह, वैमनस्य को विच्छिन्न कर साम्य, बंधुत्व, शान्ति और उत्फुल्ल प्रेम में बदल दिया । इनके चरण चिन्हों में शिशिरांशु की शीतल किरणें तथा अंशुमान की अन्तर्मुखी ज्योति प्रदीप्तमान हो रही थी । अतः पुरातन इनके दिव्यलोक से दमक उठा और नूतन इनकी कामनीय कला से उद्भासित हुई । व्यापक फलक पर वे भक्तवत्सल ही नहीं, बल्कि सर्ववत्सल की सुन्दर इकाई थे । वे सुन्दर को शुचितर बनाने में सुपरमैन थे । जो भी हो, सत्यसंघ श्रीराम का विराट चरित्र सत्यशील, सुन्दर और प्रेम की मन्दाकिनी से ओतप्रोत है । इनका स्तवन अमोघ है और दर्शन भी अमोघ है । तभी तो इनका सदाचार विभूषित आचार-व्यवहार लोकगत होते हुए भी लोकोत्तर परिणति में निहित है ।

इस प्रकार हम श्रीराम में शील, शक्ति और सौन्दर्य का विलक्षण सामरस्य देखते हैं । इसलिए समग्र संसार राम को मर्यादा पुरुषोत्तम मानकर इनके द्वारा स्थापित धर्मराज्य के लिए आज भी संसार लालायित है । महर्षि बाल्मीकि ने राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य के माध्यम से जिस अद्भुत विराट शक्ति को उद्घोषित किया है, वह विश्व साहित्याकाश में अतुलनीय है और अप्रतिम है । इस प्रकार शील शिरोमणि दाशरथी राम का स्वच्छ, शुचि विशद, समुज्ज्वल चरित्र, शीलसिक्त भूषित और मृदुल है । इनकी शक्ति मर्यादित और सौम्यकान्त है तथा सौन्दर्य-तत्व परम रमणीयता से अनुप्राणित है । इनका शील, शक्ति और सौन्दर्य सब कुछ महामृत्युंजय गुणों से विभूषित है और विश्व में अद्यतन और ऊर्ध्वगत रवि-शशि-सा ज्योतिर्मान है । तभी तो आदिकवि बाल्मीकि ने तूर्यस्वर में घोषणा की है—

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।
तावद्रामायण कथा लोकेषु परि चरिष्यति ।।

हिंदी अध्यापक
संत फ्रांसिस उच्च विद्यालय
पोड़ैयाहाट, जिला-गोड्डा
पिन-८१४१३३

मो० ९१६२२०८००५

–०–

श्री सुखदेव जी शर्मा

(स्व० सुखदेव शर्मा जी के पुत्र श्री शानू शर्मा जी का यह लेख देर से मिलने के कारण पिछले अंक में प्रकाशित न हो सका, अतः इस अंक में प्रकाशित किया जा रहा हैं — सम्पादक)

सुखदेव शर्मा जी का जन्म एक सम्पन्न व्यवसायी आर्य समाजी परिवार में हुआ था । उनका जन्म २५ जनवरी १९२१ में अमृतसर में हुआ और तब परिवार लाहौरवासी था । उनके पिता श्री शंकरदास व माता श्रीमती सुभद्रा देवी थीं, जिनका व्यवसाय लाहौर में था । जन्म के कुछ ही वर्षों में माता का देहान्त हो गया और १९४६ में पिता का भी । २५ वर्ष की छोटी उम्र में घर व व्यवसाय का सारा भार सुखदेव जी के कंधों पर आ पड़ा, जिसे इन्होंने भरपूर सामर्थ्य के साथ निभाया ।

भारत के विभाजन के दिनों में सम्पूर्ण परिवार को सुरक्षित लाहौर से बाहर लेकर आना, कुछ सदस्यों को जम्मू और कुछको मेरठ छावनी में रख कर आने का कार्य इन्होंने पूर्ण किया । विभाजन के निकटतम दिनों में परिवार के बाकी सदस्यों को एक दिन स्टेशन में एक गाड़ी में बैठाते समय किसी मुसलमान परिचित द्वारा पहचाने जाने पर, इन्होंने तुरन्त परिवार जनं को लेकर गाड़ी बदल डाली, ये इनकी उच्च सूझ-बूझ का नतीजा ही था । वरना उस पहली गाड़ी में खूब मार काट हुई थी ।

१२ अगस्त १९४७ को इन्होंने अपने घर को ताला लगाया, दुकान को छोड़ा और पालतू गाय को गली में बाहर छोड़ दिया और सदा के लिये लाहौर को विदा दे दी ।

डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर से सुखदेव जी बी.ए. पास कर चुके थे । भारत आकर पहले दिल्ली के सदर बाजार में परिवार के सदस्यों के रहने की व्यवस्था की फिर अजमेरी गेट इलाके में, एक दुकान ली और अपने बड़े भ्राता श्री सत्यदेव विद्यालंकार जी को वहाँ स्थापित किया । तब कलकत्ते व्यवसाय के लिये आए और यहाँ अपने को एवं परिवार को व्यवस्थित किया ।

जल्द ही बॉल बियरिंग के व्यवसाय में एक नेता की भूमिका निभाते हुये व्यवसायिक एसोसियेशन की स्थापना की और सारे भारत में एक आदर्श नेता की तरह सम्मान पाने लगे ।

साथ ही साथ कलकत्ता आर्य समाज में सेवारत हुये एवं वहां भी नेतृत्व निभाया । कितने सामाजिक आर्य जलसों में कार्य भार सम्भाला, कई कई धर्म परिवर्तन अभियान किये, बंगाल, उड़ीसा, बिहार, आसाम आदि में । जीवन के ३० वर्ष आर्य कन्या महाविद्यालय की सेवा में लगा कर उसे एक उन्नत स्थान पर पहुँचा दिया ।

कलकत्ता शहर के जाने माने परिवारों में आपके परिवार की गिनती होती थी ।

श्रीमती सुनीति देवी से इनका विवाह १९४९ में हुआ एवं पूरे धर्मनिष्ठ दम्पत्ति की तरह

(ऊप ३ छपए गर्ए)

भगवान और ईश्वर शब्द की परिभाषा

– पं० उम्मेदसिंह 'विशारद'

प्राचीन इतिहास अवलोकन से ज्ञात होता है कि महाभारत काल तक भारत वर्ष में एक निराकार ईश्वर की प्रार्थना व स्तुति होती थी और यज्ञ प्रधान काल था । महाभारत युद्ध के बाद वैदिक विद्वान्, आचार्यों की क्षति होने के कारण अज्ञान व अन्धविश्वासों का जाल फ़ैलने लगा । जनसाधारण वैदिक धर्म व सिद्धान्तों को भूलने लगे और अवसरवादी लोगों ने अपने-अपने मतों की दुकानें खोल दीं । जनसाधारण में उच्च संस्कारों व राष्ट्र भक्ति की कमी आने लगी और ईश्वर के नाम से धार्मिक अन्धविश्वास, रूढ़ि सामाजिक परम्परायें बुरी तरह से फैलने लगीं। चारों ओर अराजकता व अमानुष्य के संस्कार फैलने लगे । मन्दिरों में महापुरूषों की मूर्तियां लगाकर महापुरुष भगवानों को ईश्वर मानकर पूजने लगे । बस यहीं से संसार में तथाकथित भगवानों की बाढ़ आने लगी और जनसाधारण सत्य ईश्वर से विमुख होने लगे । फलस्वरूप आज सारा संसार अराजकता, उग्रवाद, अनाचार, द्वेष के बारूद के ढेर पर बैठा है ।

भगवान की परिभाषा :-

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशस श्रयः–।

ज्ञानेवैराग्योश्चैव षण्णां भग इतीरणाः–।।

१. अर्थात्ः सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री ज्ञान, वैराग्य इन छः का नाम भग है, भगवान का पहला गुण सम्पूर्ण ऐश्वर्य ः जिसके पास जितने अधिक भग है, वह भगवान कहलाता है, किन्तु जिसके पास ऐश्वर्यों का अभाव होता है वही सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को पुरुषार्थ से प्राप्त करता है, जैसे श्रीराम व श्रीकृष्ण के पास सम्पूर्ण ऐश्वर्य थे । किन्तु जो संसार में जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है उसीको उक्त भग प्राप्त करने पड़ते हैं । इसलिए उनको भगवान कहते हैं । वह ईश्वर नहीं हो सकते हैं ।

ईश्वर – के गुण कर्म और स्वभाव और स्वरूप सत्य है जो केवल चैतन्य वस्तु है तथा जो एक अद्वितीय, सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वव्यापक अनादि, आदि सत्य गुण वाला हैं जिसका स्वभाव, अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मा आदि है । जिसका कार्य-जगत की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना है, सब जीवों को पाप पुण्य के फल ठीक-ठीक पहुँचाता है । जो सदैव ऐश्वर्ययुक्त है और जगत के प्राणियों को ऐश्वर्य देने वाला है और स्वयं ऐश्वर्य ग्रहण नहीं करता, अपितु कराता है उसे ईश्वर कहते हैं । जन्म नहीं लेता अपितु जन्म देता है ।

नोट :- ईश्वर की यह व्याख्या सम्पूर्ण लेख के कलेवर में समझने की प्रार्थना है । २. भगवान शब्द का दूसरा गुण धर्म : धर्म ऐवो हतो हन्ति धर्मा रक्षिति रक्षितः–जो सत्यवादी मनुष्य ईश्वरीय गुण कर्म स्वभाव और वेदों की शिक्षा के आधार पर धर्ममानना और पदार्थ के गुण कर्मानुसार मानना व प्राणी मात्र के साथ अनुकूल व्यवहार करना, तथा जीवन के अन्दर सत्य आचरण, सत्य पुरूषार्थ, सत्यप्रभु भक्ति व सृष्टि कर्मानुसार व्यवहार और सत्य असत्य, धर्म अधर्म, पाप पुण्य व कृत्य अकृत्य, को सत्य की कसौटी पर परख कर चलता हैं तथा जैसे परमात्मा द्वारा प्राणी मात्र पर उपकार किये जा रहे हैं वैसे ही प्राणी मात्र के साथ करना सदैव सत्य

मार्ग पर चलना । यह भगवान का दूसरा भग है जो केवल मनुष्य रूपी उत्तम पुरूष में ही घट सकते हैं ।

ईश्वर :- ईश्वर सारे संसार का स्वयिता है तथा ईश्वर ने प्रत्येक पदार्थ जड़ व चैतन्य में गुण विशेष दिये हैं जो सूर्य, अग्नि, वायु, जल, अन्न, फल, वनस्पति और मानव की रचना, आदि क्रियाओं का गुण धर्म एक जैसे रहते हैं इनके गुण धर्म में कभी परिवर्तन नहीं होता । अपितु अपरिवर्तनशील गुण है, यही ईश्वरीय धर्म कहलाता है । जो प्राणी मात्र के कल्याण के लिए है। इसलिए ईश्वर कहाता है जो मनुष्य रूपी भगवान नहीं कर सकते हैं अपितु ईश्वरीय गुणों के सहारे जीते हैं ।

भगवान का तीसरा भग यश है : यश और अपयश देहधारी मनुष्यों में ही घट सकते हैं संसार में जिस महापुरुष ने अपने सात्विक कर्मो द्वारा, वेदानुकूल और ईश्वरीय गुण कर्म धर्मानुसार जन कल्याण किये हो उसका यश चारों ओर फैलता है । यह मनुष्यों में ही घट सकता है । इसलिए भगवान रूपी मनुष्य का तीसरा भग है ।

ईश्वर : ईश्वर निर्विकार है और सर्वशक्तिमान है, सर्वन्तर्यामी है, सृष्टि रचियता है । मानव को कर्मानुसार फल प्रदान करता है । अतः ईश्वर यश और अपयश से ऊपर है । ईश्वर सदैव ऋत यश में रहता है ।

भगवान का चौथा भग/श्री है :– महापुरूष संसार में जन्म लेकर जितना-जितना, वेदानुकूल, सृष्टिक्रमानुसार सत्य धर्म, सत्य, कर्म, सत्य ईश्वरभक्ति और जनता को सन्मार्ग दिखाना, परोपकार आदि गुणों से उसे संस्कार में ''श्री'' प्राप्त होती है अर्थात् श्रेष्ठता प्राप्त होती है । यह गुण केवल मनुष्य पर ही घट सकते हैं जिस पर यह गुण आ जाते हैं उसे भगवान कहते हैं ।

ईश्वर :- ईश्वर निर्विकार है और शक्तिमान है और सर्वाधार है, सर्वगुण सम्पन्न है और सर्वोत्तम है सारे ब्रह्माण्ड का रचियेता है, कालतीत है और श्री और निन्दा के गुणों के ऊपर वह सदैव कल्याणकारी होने से सदैव ऋत ''श्री'' ही है इसलिए उसे ईश्वर कहते हैं ।

भगवान का पाँचवा गुण ज्ञान है :- मानव जन्म होते ही अज्ञानी रहता है और विद्या अध्ययन से ही ज्ञान प्राप्त करता है और संसार में अपने विवेक से, भविष्य, वर्तमान का ज्ञान प्राप्त करता है और अपने ऊँचे ज्ञान से संसार के प्राणियों का अज्ञान मिटाना है उसे भगवान कहते हैं ।

ईश्वर :- ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है जो सत्य विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है और सदैव, भूत, भविष्य व वर्तमान से ऊपर रहता है जो सर्वान्तर्यामी है उसे ईश्वर कहते हैं, जो मनुष्य रूपी भगवान में नहीं घट सकते हैं ।

भगवान का छठा गुण वैराग्य है :– मनुष्य रूपी महापुरुष संसार में जन्म तो लेते है किन्तु कर्म मुक्त अर्थात् कर्म बन्धन मोह माया में नहीं फंसते । सदैव त्याग और परोपकार की भावना से कार्य करते हैं । संसार के विषयों से उपराम रहते हैं । जीवन और मृत्यु के रहस्य को समाप्त कर रोग मुक्त रहते हैं । इसलिए संसार उन्हें भगवान कहते हैं ।

ईश्वर :- ईश्वर निर्विकार और अनादि है तथा विकार रहित है सूक्ष्म से सूक्ष्म है । राग और वैराग्य से रहित है । प्राणी मात्र की आत्मा में संसार चक्र चलाने के लिए राग व वैराग्य उत्पन्न करने वाला है इसलिए उसे ईश्वर कहते हैं ।

बालक की शक्तियों का क्रमिक विकास

बालक के शरीर तथा आत्मा की शक्तियों का विकास एकदम नहीं होता । वे एक नियमित क्रम से एक-दूसरे के पश्चात् प्रकट होती हैं । हाथ की मुट्ठी को मुँह तक ले जाने के लिए ही बच्चे को कई सप्ताह तक यत्न करना पड़ता है । फिर बोलने की शक्ति का विकास तो जन्म से कई वर्ष पीछे होता है । इसी प्रकार खड़े होने और तर्क करने की शक्तियाँ भी विशेष अवधि के अनन्तर ही प्रकट होती हैं । इसलिए हमें इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि किस अवस्था में बालक की किस शक्ति का विकास होता है । तभी हम उसकी शिक्षा पर यथोचित रूप से ध्यान दे सकेंगे । हमें अपने बालक की जन्मसिद्ध क्षमताओं और शक्तियों को भी भली भांति जानना चाहिए, क्योंकि बालकों की क्षमताएँ भिन्न-भिन्न होने के कारण उनकी शिक्षा एक ही ढङ्ग पर नहीं हो सकती । इसके अतिरिक्त हमें अपने लक्ष्य और साधनों का भी खूब ज्ञान होना चाहिए, तभी बालक की शिक्षा में जो नैतिक समस्याएँ उपस्थित होंगी । उनके हल करने में हम इस ज्ञान की सहायता से सफल हो सकेंगे ।

मेरे एक परिचित सज्जन हैं । वे एक पाठशाला में अध्यापक हैं । उनकी स्त्री का देहान्त हो चुका है । उनका एक सात वर्ष का एकलौता पुत्र है । वह एक स्कूल की दूसरी श्रेणी में उर्दू पढ़ता है । उसका शरीर, कदाचित् माता के देहान्त से भोजन का अच्छा प्रबन्ध न होने के कारण, बहुत दुबला है । अध्यापक महाशय अपना संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी और गणित का सारा उपार्जित ज्ञान उस दुर्बलकाय बालक में एकदम भर देना चाहते हैं । स्कूल से घर पहुँचते ही वे उसे ले बैठते हैं और तीन-चार घण्टे तक बराबर नेल्सन रीडर और उपनिषद् रटाते हैं । लड़का दूसरी श्रेणी में पढ़ता है, पर आप उसे चौथी श्रेणी का गणित सिखाते हैं । बालक का जी जब तनिक उचाट होता है और पिताजी की शिक्षा पर उसका ध्यान नहीं रहता तो वे झट उसके मुँह पर दो थप्पड़ लगा देते हैं । वे उसे दूसरे लड़कों के साथ खेलने भी नहीं देते कि यह उनसे बुरी बातें सीख लेगा । इस सारे शासन का कुफल यह हुआ है कि पढ़ने से बालक को सर्वथा अरुचि हो गई है । दूसरी श्रेणी में भी वह नहीं चल सकता और उसके हृदय में पढ़ने का इतना डर बैठ गया है कि उसने स्कूल जाना ही छोड़ दिया । उसका मस्तिष्क इतना थक गया है, और उसका मन इतना उदासीन हो गया है कि अब उसे एक सरल सी बात का समझाना भी मुश्किल जान पड़ता है और मारपीट का उस पर कुछ भी परिणाम नहीं होता । वह पिता को कसाई समझता और दूर से आते देखकर ही भाग जाता है और फिर रात तक घर नहीं आता ।

इसी प्रकार एक बड़े श्रीमान् के पोते की दशा देखने में आई । बच्चा अभी मुश्किल से बात करना सीखा था कि सरदार साहब ने उसे घर की वस्तुओं के अंग्रेजी नाम सिखलाना आरम्भ किया, जिससे नन्हें से मस्तिष्क पर भारी बोझ आ पड़ा । इसका परिणाम यह हुआ कि लड़का जन्म भर के लिए उच्च शिक्षा से वञ्चित रह गया ।

उपर्युक्त दोनों अवस्थाओं में कुफल का कारण शिशु-प्रकृति से अनभिज्ञता और लक्ष्य का

अभाव है । यदि हमें इस बात का ज्ञान हो कि अमुक अवस्था में बालक इतनी उन्नति कर सकता है और उससे हम इन-इन बातों के सीखने की आशा कर सकते हैं तो हमें अपने प्रयत्नों में कभी निराशा न हो । अव्यवस्थित शिक्षा का परिणाम कभी आशाजनक नहीं हो सकता । रोग उसीका दूर होता है जो लग कर चिकित्सा कराता है । एक दिन औषध खा लिया और फिर चार दिन छोड़ दिया, इससे कभी लाभ नहीं हो सकता । लक्ष्यहीन शिक्षा में जितनी चिन्ता और मनस्ताप होता है, सुव्यवस्थित शिक्षा के लिए दृढ़तापूर्वक यत्न करने में उससे बहुत कम उद्वेग होता है । उदाहरणार्थ, जब बच्चे बहुत तंग करते हैं, तब माता-पिता थक कर अथवा कलह से बचने के लिए बच्चों के आगे सिर झुका देते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि बालक अपनी बात मनवाने के लिए तंग करने और रोने को ही अपना मुख्य साधन बना लेता है । आप बहुतेरे ऐसे माता-पिता देखेंगे जो यद्यपि बच्चों के हठ के सामने सदा सिर झुका देते हैं, पर फिर भी उनका मन अशान्त रहता है । साथ ही बालक भी यथार्थ संयम और उचित पथदर्शन न होने के कारण बहुत कम सुखी रहता है । इसलिए पहले खूब सोच समझकर शिक्षा की एक युक्तिसिद्ध कल्पना तैयार कर लेनी चाहिए और फिर उस कल्पना पर दृढ़तापूर्वक चलना चाहिए । इससे सब बाधाएँ और कठिनाइयाँ पूर्ण रूप से दूर हो जाती हैं ।

उपर्युक्त कल्पना को ग्रहण करने से केवल आरम्भ में ही बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ होंगी और कभी-कभी आप पर भारी आयास भी पड़ेगा परन्तु इस आयास को सहना आवश्यक है । यदि माता-पिता का स्वास्थ्य अच्छा हो तो आयास कम हो जाता है । अपने बालकों या दूसरों के बालकों से प्राप्त किया हुआ अनुभव उद्देश्य सिद्धि में बड़ी सहायता देता है । केवल आरम्भ में ही आपको कष्ट होगा, क्योंकि फिर आपके बच्चे, अल्प विनीत और सुशिक्षित बालकों के सदृश, आपको तंग होने का बहुत कम अवसर देंगे । चाहे आपके बालक असाधारण रूप से भी हठीले क्यों न हों तो भी आपको कभी आपे सेँ बाहर न हो जाना चाहिए । कारण यह है कि छोटे बालकों की स्वाभाविक और प्रचण्ड कार्यशक्ति को दबाना कदापि उचित नहीं है ।

(पृष्ठ १८ का शेषांश)

ध्यानाकर्षण :- महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने अमूल्य ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में कहीं भी एक शब्द भगवान नहीं लिखा है अपितु ईश्वर व परमात्मा तो जगह-जगह है तथा सम्पूर्ण आर्ष ग्रन्थों में भी ईश्वर व परमात्मा शब्द ही लिखा है ।

आर्य उपदेशकों से निवेदन :- प्रायः जनसाधारण में प्रचलित ईश्वर के लिए भगवान शब्द का प्रयोग आर्य उपदेशक भी करते रहते हैं । जबकि सम्पूर्ण वेदों में और वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थों में कहीं पर भी ईश्वर के लिए भगवान नहीं लिखा है । अतः हमें बड़ी सावधानी से उपदेश करते समय ईश्वर, या परमात्मा शब्द का प्रयोग ईश्वर के लिए करना चाहिए और महापुरुषों के लिए भगवान शब्द का प्रयोग करना उचित है । इसलिए संसार, राम, कृष्ण, हनुमान या अन्य देवताओं की तो जय बोलता है किन्तु ईश्वर की जय कोई भी नहीं कहता है क्योंकि ईश्वर जय विजय से ऊपर है और सदैव ऋत सत्य है ।

मो० : ९४११५१२०१९

गढ़निवास मोहकमपुर, देहरादून

"अभयदान"

–देवातिथि

अस्त हृदय हो उदय उदारा ।
प्रभुवर ! हो भय अभय हमारा ॥

जड़-चेतन सुर मीत हमारें ।
रम्य रीति की नीति निखारें ॥
घृणा-क्रोध को दूर हटा कर,
हमसे पावन प्रीति पगारें ॥

अनय हटे हो सुनय सुखारा ।
प्रभुवर ! हो भय अभय हमारा ॥१॥

बोल बोल अभिलाषा करते ।
हर क्षण कर्ण तुम्हारे सुनते ।
सुखसाज आप कविराज आप,
क्या नहीं हमें तुम दे सकते !

श्रेय प्रेय अभ्युदय उजारा ।
प्रभुवर ! हो भय अभय हमारा ॥२॥

अब तलक बहुत ताड़ना सही ।
शेष साधना याचना यही ।
कृपा दृष्टि से हमें निहारो,
कुछ और हमें माँगना नहीं ।

नमन हमारा बने सहारा ।
प्रभुवर ! हो भय अभय हमारा ॥३॥

श्रोत :- श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचो भिर्वाकै रूप यामि रातिम् ।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यज हेड़ो अग्ने ॥ (अथर्व १९.३.४)

– **देवनारायण भारद्वाज**
'वरेण्यम' अवन्तिका (प्रथम)
रामघाट मार्ग अलीगढ़
पिन-२०२००१ (उ०प्र०)

॥ ओ३म् ॥

''योगः कर्मसु कौशलम् । समत्वं योग उच्यते ॥''

– खुशहाल चन्द्र आर्य

यह श्लोक मैंने आदरणीय डॉ० महेश विद्यालंकार द्वारा लिखित ''सरल गीता-ज्ञान'' पुस्तक से उद्धृत किया है । पुस्तक की भाषा आति सरल, सुस्पष्ट व हृदयग्राही है और विषय भी बहुत ही शिक्षाप्रद व जीवन में काम आने वाला होने से बड़ा प्रेरणा दायक है । इसी भावना से मैंने यह लेख लिखा है । कृपया पाठक गण इसका लाभ उठावें । अर्थ इस भाँति है ।

जो भी हम कार्य करें, उनमें सुन्दरता, कुशलता व आकर्षण हो । कर्म की कुशलता ही योग है । यदि हम, माता, पिता, पुत्र, अध्यापक, डाक्टर, व्यापारी व किसान, जो भी हों, जो हमारा कर्त्तव्य व धर्म है, उसको हम यदि सच्चाई, ईमानदारी व कुशलता से निर्वाह करते हैं, उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं छोड़ते हैं, तो यह भी योग ही है । अपने कर्त्तव्य में सुन्दरता ले आना, योग बन जाता है । समत्व की भावना भी गीता की दृष्टि में योग है । सबके प्रति समान भाव एवं व्यवहार अपना लेना भी योग है । हर स्थिति व परिस्थिति में समरसता बनाये रखना, सुख-दुःख, हानि-लाभ, जन्म-मरण आदि में समत्व की स्थिति को प्राप्त कर लेना भी योग कहलाता है । गीता योग को जीवन के व्यापक स्तर पर देखती है । अपने दायित्व, कर्त्तव्य, जिम्मेदारी, आचार-विचार, कर्म, व्यवहार आदि को सुन्दरता व बढ़िया तरह से करना व निभाना योग में आ जाता है । जीवन को व्यवस्था, नियम, संयम, अनुशासन आदि में बाँधकर चलाना भी योग का व्यवहारिक पक्ष है।

गीता कहती है — योग तो बाहर की दुनिया से अन्दर की दुनिया में आने की प्रक्रिया है। योग स्थूल से सूक्ष्म को जानने की विधि है । योग मन की अनन्त शक्तियों को केन्द्रित करने का उपाय है । बिगड़े, हठी, जिद्दी और चंचल मन को संभालने सुधारने और सही दिशा में लगाने का ढंग योग है । मन ही मनुष्य का मित्र है और मन ही मनुष्य का शत्रु है । जिसने मन को संभाल लिया, वह संभल गया । जिसने मन को बिगाड़ लिया उसका सर्वनाश हो गया । मन जहाँ-जहाँ जाता है और भागता-फिरता है, योग उसे नियन्त्रित करके आत्मा की ओर ले चलता है । योग के आधार है यम और नियम । मन, बुद्धि की पकड़ में आता है । मन पर बुद्धि ब्रेक लगाती है । योग बुद्धि को निर्मल व पवित्र रखता है ।

गीता योग की महिमा से भरी हुई है । वर्तमान जीवन और जगत् में मानसिक रोग तेजी से बढ़ रहे हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मन के रोग है । इनका बाहर की दुनिया में कोई इलाज नहीं है । किसी व्यक्ति को बड़ा क्रोध आता है । इसकी दवाई किसी डाक्टर के पास नहीं है । क्रोध को शान्त करनें या रोकने के लिए योग की शरण में आना होगा । कोई व्यक्ति बड़ा लालची है । दिन-रात लालच के पीछे दौड़ रहा है । उसका योग के द्वारा इलाज संभव है। योग मन को

संयम का पाठ पढ़ायेगा, तब मन कही रुकेगा। मन रुक गया तो क्रोध व लालच भी रुक जायेंगे। आज इच्छाओं, वासनाओं और भोगों के लालच के कारण व्यक्ति में जो तनाव, चिन्ताएँ भय, अनिद्रा, रोग, अशान्ति आदि आ रहे हैं, इनका केवल इलाज योग साधना में है । योग से मन की चंचलता, वासनाओं और इच्छाओं पर ब्रेक लगता है । योग तन और मन को स्वस्थ, शान्त, प्रसन्न, नीरोग तथा चिन्ता-मुक्त रखता है । गीता सुखी जीवन का आधार योग को मानती है । योग-साधना मनुष्य को अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सहयोग देती है । योगाभ्यास से ही आत्मदर्शन व परमात्मदर्शन संभव होते हैं ।

C/o गोविन्दराम आर्य एण्ड सन्स
१८०, महात्मा गाँधी रोड, २ तल्ला
कोलकाता - ७०.०००७

फोन : (०३३) २२१८३८२५
मोः ९८३०१३५७९४

—०—

।। ओ३म् ।।

आर्य कन्या गुरुकुल शिवगंज का अष्टादश वार्षिकोत्सव
एवं
नवनिर्मित अतिथिशाला का लोकार्पण

धर्मानुरागी स्नेही आत्मीयजन,

अतिहर्ष के साथ आर्य कन्या गुरुकुल शिवगंज अपना १८वाँ वार्षिकोत्सव प्रभु कृपा से बड़ी धूमधाम से मनाने जा रहा है । ज्येष्ठ शुक्ल षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी वैक्रमाब्द २०७३ तदनु शुक्र, शनि, रवि, १०,११,१२ जून २०१६ के, ओजस्वी, आकर्षण भ्रान्तिनिवारक, प्रेरणादायक त्रिदिवसीय कार्यक्रम में आपकी उपस्थिति सादर प्रार्थनीय है ।

मान्यवर !

जब तक भूमण्डल पर वेद-वेदाङ्गो का पढ़ना-पढ़ाना रहा, वैदिक संस्कृति सभ्यता रही, आर्ष परम्परा में पढ़ने पढ़ांने वाले ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियों, विद्वानों का सम्मान रहा । तब तक पूरे भूमण्डल पर सुख शान्ति-समृद्धि का साम्राज्य रहा । देश की वर्त्तमान स्थिति को देखते हुये युवा पीढ़ी को जागृत व सशक्त करने हेतु इस आयोजन में आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध सम्मान्य विद्वद्शिरोमणि संन्यासी, विद्वज्जन, उपदेशक उपस्थित हों, हमारा मार्गदर्शन करेंगे ।

आप स्नेही भद्रजनों से पुनः पुनः निवेदन है कि आप सपरिवार इष्ट मित्रों सहित समय पर पधारकर कार्यक्रम की शोभा को बढ़ायें । तथा तन-मन-धन से सहयोग कर पुण्यार्जन के पवित्र कार्य का लाभ उठायें ।

आयोजन स्थल :-

आर्य कन्या गुरुकुल

शिवगंज, जिला सिरोही-३०७०२७ (राजस्थान)

दूरभाष : ०२९७६-२७०६२९, ९४१४५३३९५१ Email - gurukulsheoganj@gmail.com

सूचना

गुरुकुल प्रभात आश्रम की सूचना

पूर्व वर्ष की भाँति इस वर्ष भी गुरुकुल प्रभात आश्रम में प्रवेश परीक्षा २६ जून २०१६ से ३० जून २०१६ तक दो सत्रों में (प्रथम सत्र - ९:०० से ११:०० बजे तक तथा द्वितीय सत्र - २:०० से ४:०० बजे तक) सम्पन्न होगी । पञ्चम कक्षा उत्तीर्ण १० वर्षीय छात्र ही इस परीक्षा में भाग लेने का अधिकारी होगा । परीक्षा लिखित व मौखिक रूप में होगी । लिखित परीक्षा में ६० प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाला विद्यार्थी ही मौखिक परीक्षा का अधिकारी चुना जायेगा ।

व्यवस्थापक —

मो० : ९७५८७४७९२० **गुरुकुल प्रभात आश्रम**

भारतीय आर्य भजनोपदेशक परिषद

कार्यालय : गुरुकुल, ११९, गौतमनगर, नई दिल्ली-११००४९

भारतीय आर्य भजनोपदेशक परिषद का वार्षिक सम्मेलन एवं सम्मान समारोह ८, ९, १० जुलाई २०१६ ई० शुक्र, शनि, रवि को **आर्य समाज बड़ाबाजार, कोलकाता** में मनाया जा रहा है । इस अवसर पर वयोवृद्ध आर्य भजनोपदेशक **पं० खेमसिंह आर्य,** पलवल, हरियाणा एवं **पं० बृजपाल 'कर्मठ'** मुजफ्फरनगर (उ०प्र०) का सार्वजनिक अभिनन्दन किया जायेगा । इसके साथ ही भजनोपदेशक परिचय, गोष्ठी तथा आर्यसमाज के प्रचार प्रसार को गति देने हेतु विचार विमर्श किया जाएगा ।

—०—

अभिमन्यु कुमार खुल्लर का सम्मान

विश्व की सर्वप्रथम आर्यसमाज मुम्बई (कांकड़बाड़ी) के १४२वें स्थापना दिवस-गुड़ी पड़वा वर्ष प्रतिपदा तदनुसार ८ अप्रैल २०१६ के अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा, मुम्बई व आर्यसमाज कांकड़बाड़ी के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित कार्यक्रम में अभिमन्यु कुमार खुल्लर ग्वालियर का सम्मान किया गया । अभिनन्दन ग्रंथ का वाचन प्रतिनिधि सभा के महामंत्री श्री अरुण अबरोल ने किया । सभा प्रधान श्री मिठाईलाल सिंह जी ने मोतियों का कण्ठहार गायत्री मंत्र अकित अंगवस्त्रम् शाल एवं २५ हजार की राशि भेंट की । तत्पश्चात् प्रतिनिधि सभा व कांकड़वाड़ी आर्यसमाज के पदाधिकारियों ने पति-पत्नी दोनों का माल्यार्पण कर स्वागत किया । लगभग एक हजार वैदिक धर्मावलम्बियों के समक्ष श्री खुल्लर ने १५ मिनट में ऋषि का गुणगान किया जिसे श्रोताओं ने सराहा । अन्त में, आचार्य वागीश जी ने आभार प्रकट किया एवं श्री खुल्लर के लेखन की भूरि-भूरि प्रशंसा की — श्री खुल्लर जी को बहुत-बहुत बधाई ।

—०—

आर्य स्त्री समाज कलकत्ता

पंडित नचिकेता जी की प्रेरणा और आर्य स्त्री समाज की बहनों के सहयोग और प्रयास से हमारा आयोजन सफल रहा। बहनों द्वारा निर्मित आम पन्ना तकरीबन ५०० लोगों में वितरित किया गया। आप लोगों को बताते हुए बड़ा हर्ष का अनुभव हो रहा है कि इस तरह का आयोजन आर्य स्त्री समाज १९, विधान सरणी, कोलकाता-६ में प्रथम बार हुआ और सफल रहा। ईश्वर की कृपा हुई तो इसी तरह का प्रयास हम भविष्य में आगे भी करते रहेंगे।

धन्यवाद !

– कविता अग्रवाल

मन्त्रिणी - आर्य स्त्री समाज कलकत्ता

आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी कोलकाता - ६ के लिए श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल द्वारा प्रकाशित
तथा एशोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स, ७/२, विडन रो, कोलकाता-६ में मुद्रित। मो. : ९८३०३७०४६३